फरवरी १९८४
वर्ष ७ : अंक १०

तित्थयर

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON

Telephone: 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयरं

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ७ : अंक १०

फरवरी १९८४

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५, कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

अर्हं २९३

मध्य भारत का जैन पुरातत्व २९५

मोक्ष सुख ३०५

समण सुत्तम् ३०८

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ३१०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३२०

अम्बिका, सातना, मध्यप्रदेश

अर्हं

युवाचार्य महाप्रज्ञ

'अर्हं' हमारा इष्ट है। यह 'अर्हत्' का बीज मंत्र है। प्रत्येक मनुष्य में असीम क्षमताएँ या योग्यताएँ होती हैं। जिसमें अपनी क्षमताओं को प्रकट करने की अर्हता जाग जाती है, जो दूसरों की अर्हता को जगाने में लग जाता है, वह अर्हत् होता है।

भगवान महावीर अर्हत् थे। यह 'अर्हं' भगवान महावीर का प्रतीक है। आनन्द केन्द्र थाइमस ग्रन्थि का प्रभाव क्षेत्र है। अर्हं उसको जगाने वाला मंत्र है। यह इसका सूचक है कि हमारे भीतर पदार्थातीत आनन्द का स्रोत बह रहा है। हम आनन्द केन्द्र में 'अर्हं' का ध्यान रख कर स्थायी आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। इस आनन्द के प्रकट होने पर मानसिक तनाव कभी नहीं होता।

'अर्हं'—१. हमारे अस्तित्व की स्मृति है।
२. हमारे इष्ट की स्मृति है।
३. हमारे सहज आनन्द को जाग्रत करने वाला है।
४. मानसिक तनाव को दूर करने वाला है।
५. मनोकायिक रोगों से बचाने वाला है।
६. इसके ध्यान से विकल्प शान्त हो जाते हैं।
७. दाएँ-बाएँ पार्श्व में विद्यमान चैतन्य केन्द्र जाग्रत हो जाते हैं।

'अ' कुंडलिनी (तैजस् शक्ति) का स्वरूप है।
'र' अग्निबीज है। इससे बुरे संस्कार नष्ट होते हैं।
'ह' आकाशबीज है। इससे चिदाकाश का अनुभव बढ़ता है।
'म्' एक झंकार है। इससे ज्ञानतंतु सक्रिय बनते हैं।

'अर्हं' के सभी वर्ण बहुत शक्तिशाली हैं। इसीलिए यह एक शक्तिसंपन्न मंत्र है। आनन्द केन्द्र में सूर्य जैसे तेजस्वी अर्हं का ध्यान करें। वहाँ निरंतर उसका अनुभव करें। जैसे-जैसे निरंतरता बढ़ेगी, अपने में अर्हं की अनुभूति विकसित होगी। पूरा व्यक्तित्व चैतन्यमय, आनन्दमय और शक्तिमय बन जाएगा।

'अर्हं' के कवच का निर्माण करें। तैजसकेन्द्र में सुनहरे रंग के कमल के मध्य अर्हं की कल्पना करें। फिर अनुभव करें—उसकी रश्मियाँ शरीर के चारों ओर फैल रही है। पूरे शरीर के चारों ओर एक कवच बन रहा है। नौ बार उस कवच का अनुभव करें। भावना करें—कोई भी अनिष्ट शक्ति इसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकेगी। यह आध्यात्मिक कवच बाहरी दुष्प्रभावों से बचाने में बहुत सक्षम है। साधना का रहस्य है 'अर्हं' के प्रति प्रणति।

मध्य भारत का जैन पुरातत्व

श्री परमानन्द जैन, शास्त्री

[पूर्वानुवृत्ति]

महोवा—इसका प्राचीन नाम काकपुर, पाटनपुर और महोत्सव या महोत्सवपुर था। इस राज्य के दो राजाओं का नाम खूब प्रसिद्ध रहा है। उनका नाम कीर्ति वर्मा और मदन वर्मा था। ईस्वी ९०० के लगभग राजधानी खजुराहो से महोबा में स्थापित हो गयी थी। कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट में इसका नाम 'जंजाहूति' दिया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी अपने यात्रा विवरण में, 'जेनाभुक्ति' का उल्लेख किया है। यहाँ की झीलें प्रसिद्ध हैं। यहाँ नगर में हिन्दू और मुसलमानों के स्मारक भी मिलते हैं। जैन संस्कृति की प्रतीक जैन मूर्त्तियाँ भी यत्र-तत्र छितरी हुई मिलती हैं। कुछ समय पहले खुदाई करने पर यहाँ बहुत-सी जैन मूर्त्तियाँ मिली थीं, जो संभवतः सं० १२०० के लगभग की थीं। उनमें से एक ललितपुर क्षेत्रवाल में और शेष बांदा में विराजमान हैं।

यहाँ एक २० फुट ऊँचा टीला है। वहाँ से अनेक खण्डित जैन मूर्त्तियाँ मिली हैं। महोवा के आस-पास के ग्रामों और नगरों में भी अनेक ध्वस्त जैन मन्दिर और मूर्त्तियाँ उपलब्ध होती हैं। उन खण्डित मूर्त्तियों के आसनों पर जो छोटे-छोटे लेख मिले हैं उनमें से कुछ लेखों का सार निम्न प्रकार है :

१—संवत् ११६६ राजा जयवर्मा, २—सं० १२०३, ३—श्री मदन वर्मा देवराज्ये' सं० १२११ आषाढ़ सुदी ३ शनो देव श्री नेमिनाथ, रूपकार लक्ष्मण, ४—सुमतिनाथ सं० १२१३ माघ सु० दू० गुरौ, ५—सं० १२२० जेठ सुदी ८ रवौ साधु देवगण तस्य पुत्र रत्नपाल प्रणमति नित्यं, ६—""तत्पुत्राः साधु श्री रत्नपाल तस्य भार्या साधा पुत्र कीर्तिपाल, अजयपाल, वस्तुपाल तथा त्रिभुवनपाल अजितनाथाय प्रणमति नित्यं।[१] एक लेख में जो सं० १२२४ आषाढ़ सुदी २ रवौ के दिन परमर्द्धि देव के राज्यकाल का है, उसमें चंदेल वंश के राजाओं के नाम दिए हुए है। श्रावकों के नाम ऊपर दिए गए हैं। इन सब उल्लेखों से महोवा जैन संस्कृति का कभी केन्द्र रहा था इसका आभास सहज ही हो जाता है।

१ देखो कनिंघम, सर्वे रिपोर्ट, जिल्द २१, पृ० ७३, ७४।

देवगढ़ का इतिहास :

देवगढ़—दिल्ली से बम्बई जाने वाली रेलवे लाइन पर जाखलौन स्टेशन से ९ मील की दूरी पर है। इस नाम का एक छोटा-सा ऊजड़ ग्राम भी है। इस ग्राम में आबादी बहुत थोड़ी-सी है। यह वेत्रवती (वेतवा) नदी के मुहाने पर नीची जगह बसा हुआ है। वहाँ से ३०० फुट की ऊँचाई पर करनाली दुर्ग है। जिसके पश्चिम की ओर बेतवा नदी कलकल निनाद करती हुई बह रही है। पर्वत की ऊँचाई साधारण और सीधी है। पहाड़ पर जाने के लिए पश्चिम की ओर एक मार्ग बना हुआ है। प्राचीन सरोवर को पार करने के बाद पाषाण निर्मित एक चौड़ी सड़क मिलती है, जिसके दोनों ओर खदिर (खेर) और साल के सघन छायादार वृक्ष मिलते हैं। इसके बाद एक भग्न तोरण द्वार मिलता है, जिसे कुंजद्वार भी कहते हैं। यह पर्वत की परिधि को घेढ़े हुए कोट का द्वार है। यह द्वार प्रवेशद्वार भी कहा जाता है। इसके बाद दो जीर्ण कोटद्वार और भी मिलते हैं। ये दोनों कोट जैन मन्दिरों को घेरे हुए हैं। इनके अन्दर देवालय होने से इसे देवगढ़ कहा जाने लगा है, क्योंकि यह देवों का गढ़ था। किन्तु यह इसका प्राचीन नाम नहीं है। इसका प्राचीन नाम 'लुच्छगिरि' या 'लच्छगिरि' था जैसा कि शान्तिनाथ मन्दिर के सामने वाले हाल के एक स्तम्भ पर शक संवत् ७८४ (वि० सं० ९१९) में उत्कीर्ण हुए गुर्जर प्रतिहार वत्सराज आम के प्रपौत्र और नागभट्ट द्वितीय या नागावलोक के पौत्र महाराजाधिराज परमेश्वर राजा भोजदेव के शिलालेख से स्पष्ट है। उस समय यह स्थान भोजदेव के शासन में था। इस लेख में बतलाया है कि शान्तिनाथ मन्दिर के समीप श्री कमल देव नाम के आचार्य के शिष्य श्री देव ने इस स्तम्भ को बनवाया था। यह वि० सं० ९१९ आश्विन सुदी १४ वृहस्पतिवार के दिन भाद्र पद नक्षत्र के योग में बनाया गया था।[२]

---

[२] (ओं) परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भो—
ज देव पट्टो वर्द्धमान—कल्याण विजय राज्ये।
तत्प्रदत्त—पञ्च महाशब्द—महासामन्त श्री विष्णु।
र—म परिभुज्य या (के) लुअच्छगिरे श्री शान्तमत (न)
(स) निधे श्री कमल देवाचार्य शिष्येण श्री देवेन कारा
पितं इदं स्तम्भं ॥ संवत् ९१९ अस्व (श्व) युज० शुक्ल
पक्ष चतुर्दश्यां वृहस्पति दिनेन उत्तर भाद्र प
द नक्षत्रे इदं स्तम्भं समाप्त मिति ॥०॥

विक्रम की १२वीं शताब्दी के मध्य में इसका नाम कीर्तिगिरि रखा गया था। पर्वत के दक्षिण की ओर दो सीढ़ियाँ हैं जिनको राज घाटी और नाहर घाटी के नाम से पुकारा जाता है। वर्षा का सब पानी इन्हीं में चला जाता है। ये घाटियाँ चट्टान से खोदी गयी हैं। जिनपर खुदाई की कारीगरी पायी जाती है। राजघाटी के किनारे आठ पंक्तियों का छोटा-सा सं० ११५४ का एक लेख उत्कीर्ण है जिसे चंदेलवंशी राजा कीर्ति वर्मा के प्रधान अमात्य वत्सराज ने खुदवाया था। यह बड़ा विद्वान और पराक्रमी था। इसने अपने शत्रुओं से इस प्रदेशमण्डल को जीता था और इस दुर्ग का नाम 'कीर्तिगिरि' रखा था। कीर्ति वर्मा चन्देलवंश का प्रतापी शासक था और शत्रुकुल को दलित करने वाला योद्धा था, जैसा कि प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के निम्न पद्य से प्रकट हैं :

नीता क्षयं क्षितिभुजो नृपतेर्विपक्षा, रक्षावती क्षितिरभूतप्रथितैरमात्यै।
साम्राज्यमस्य विहितं क्षितिपालमौलि-मालार्चितं भुवि पयोनिधि-
मेखलायाम् ॥३॥

दूसरी नाहर घाटी के किनारे भी एक छोटा ७ पंक्तियों का अभिलेख अंकित है। यहाँ एक गुफा है, जिसे सिद्ध गुफा भी कहा जाता है। यह भी पहाड़ में खुदी हुई है। जिसका मार्ग पहाड़ पर से सीढ़ियों द्वारा नीचे जाता है। इसके तीन द्वार हैं, दो खंभों पर छत भी अवस्थित है। इस

---

* चांदेल्लवंशकुमुदेन्दुविशालकीर्तिः, ख्यातो बभूव नृप संघनतांघ्रिपद्मः।
विद्याधरो नरपतिः कमलानिवासो, जातस्ततो विजयपालनृपो नृपेन्द्रः ॥
तस्माद्धर्मपरश्रीमान् कीर्तिवर्मनृपोऽभवत्। यस्य कीर्तिसुधाशुभ्रे त्रैलोक्यं सोधतामगात्।
अगदं नूतनं विष्णुमाविर्भूतमवाप्य यम्। नृपाब्धि तस्समाकृष्टा श्रीरस्थैर्यं प्रमार्जयत् ॥
राजोडुमध्यगतचन्द्रनिभस्य यस्य, नूनं युधिष्ठिर - शिव-रामचन्द्रः।
एते प्रसन्नगुणरत्ननिधौ निविष्टा, यत्तद् गुणप्रकररत्नमये शरीरे ॥
तदीयामात्यमन्त्री द्वो रमणीपुरविनिर्गतः। वत्सराजेति विख्यात श्रीमान्महीधरात्मजः ॥
ख्यातो बभूव किल मन्त्रपदैकमात्रे, वाचस्पतिस्तदिह मन्त्रगुणैरुभास्याम् ॥
योऽयं समस्तमपि मण्डलमाशु शत्रोराच्छिद्य कीर्तिगिरिदुर्गमिदं व्यधत्त ॥
संवत् ११५४ चैत्र वदी २ बुधौ, (देवगढ़ शिलालेख)

गुफा के अन्दर भी गुप्त समय का छोटा-सा लेख अंकित है, जो संवत् ६०६ सन् ५५२ का बतलाया जाता है। इसमें सूर्यवंशी स्वामी भट्ट का उल्लेख है। यह लेख गुप्तकालीन है। एक दूसरा भी लेख है जिसमें लिखा है कि राजा वीर ने सम्बत् १३४२ में तुण को जीता था।

इन सब कथनों से जाना जाता है कि इसका देवगढ़ नाम विक्रम की १२वीं शताब्दी के अन्त में या १३वीं के प्रारम्भ में किसी समय हुआ है। यह स्थल अनेक राजाओं के अधिकार में अवस्थित रहा है। इस प्रान्त में पहले सहरियों का राज्य था। बाद में गोंड़ राजाओं ने अधिकार कर लिया था। स्कन्दगुप्त आदि इस वंश के कई राजाओं के शिलालेख अब तक देवगढ़ में पाये जाते हैं। इनके बाद कन्नौज के भोजवंशी राजाओं ने इस प्रान्त को अपने अधिकार में किया था। इसके पश्चात् चंदेल वंशी राजाओं का इस पर स्वामित्व रहा। सन् १२६४ ई० में यह विशाल नगर था। उस समय यह बहुत सुन्दर और सूर्य के प्रकाश के समान देदीप्यमान था। इसी वंश ने दतिया के किले का निर्माण कराया था। ललितपुर के आसपास इस वंश के अनेक लेख उपलब्ध होते हैं। इस वंश की राजधानी महोवा थी। इनके समय जैन धर्म को पल्लवित होने का अच्छा अवसर मिला था। इस वंश के शासन समय की अनेक कलाकृतियाँ, मन्दिर और जैन मूर्त्तियाँ महोवा, अहार, टीकमगढ़, मदनपुर, नावई और जखौरा आदि स्थानों पर पायी जाती हैं।

महाराजा सिन्धिया की ओर से कर्नल वैयटिस्टि फिलोज ने सन् १८२१ में देवगढ़ पर चढ़ाई की थी। उसने तीन दिन बराबर लड़कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। चंदेरी के बदले में महाराज सिन्धिया ने देवगढ़ हिन्द सरकार को दे दिया था। हो सकता है कि किले की दीवार चदेलवंशी राजाओं ने बनवायी हों, परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। उसकी मोटाई १५ फुट की है जो बिना सीमेंट के केवल पाषाण से बनी हुई है। नदी की ओर की हदबंदी की दीवाल बनी होगी तो वह गिर गयी होगी या फिर वह बनवायी ही नहीं गई। परन्तु ऊँचाई कहीं भी २० फुट से अधिक नहीं है। उत्तरी-पश्चिमी कोने से एक दीवार २१ फुट मोटी है जो ६०० फुट तक पहाड़ी के किनारे चली गई है। संभवतः यह दीवार दूसरे किले की हो, जो अब विनष्ट हो चुका है।

देवगढ़ का यह स्थान कितना सुरम्य और चित्ताकर्षक है इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। वेत्रवदी नदी के किनारे-किनारे दाहिनी तरफ मैदान अत्यन्त ढालू हो गया है। पहाड़ की विकट घाटी में उक्त सरिता सहसा पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। वहाँ की प्राकृतिक सुषमा और कलात्मक सौन्दर्य दोनों ही अपनी अनुपम छटा प्रदर्शित करते हैं। वहाँ दर्शकों को वैभव की असारता के स्पष्ट दर्शन होते हैं जो स्पष्ट सूचित कर रहे हैं कि हे पामर नर! तू वैभव के अहंकार में इतना क्यों इठला रहा है? एक समय था जब हम भी गर्व में इठला रहे थे। उस समय हमें भावी परिवर्तनों का कोई आभास नहीं था, किन्तु दुर्दैव के कारण हमारी यह अवनत अवस्था हुई है, अतः तू अब भी समझ और सावधान हो।

विन्ध्य पर्वतमाला की सघन वनाच्छादित सुरम्य उपस्थली में यह पुण्य क्षेत्र जीवनदायिनी सलिला वेत्रवती से सटी हुई डेढ़ दो मील लम्बी पहाड़ी के ऊपर एक चौकोर लम्बे मैदान में फैला हुआ पग-पग पर अनुपम सांस्कृतिक जीवन कला की विभूतियों के मनमोहक दृश्य उपस्थित करता है। जिसमें तल्लीन होकर एक बार दर्शक हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, मोह-मत्सर, काम आदि के संस्कार रूपी बन्धनों से मुक्त होकर प्रकृति की गोद में विलीन-सा हो जाता है और अपने सारे अहकारमय ऐहिक अस्तित्व को भूलकर अपने आपको न्यूनतम से न्यूनतम रजकण से भी तुच्छ पाता है। प्रशान्त मूर्त्तियाँ, वेदिका, स्तम्भ तोरण, दीवारें और अन्य कलात्मक अलंकरण जो यशस्वी शिल्पियों द्वारा चमत्कार पूर्ण सामग्री निर्मित की गई है वह अपनी मूक प्रेरणा द्वारा भिन्न विचार मुद्राओं में आध्यात्मिक जीवन की झाँकी का सन्देश प्रस्तुत करती है। कहीं चमत्कारिक मूर्त्ति-निर्माणकला के छिटकते हुए सौन्दर्य से देदीप्यमान प्रतीकों, तीर्थंकर पार्श्वनाथ की विशालकाय मूर्त्तियों और अगणित अर्हन्तों की विचार प्रेरक मुद्राओं वाले प्रतिबिम्ब उस वनस्थली की स्तब्ध शांति के मूक स्वर में आनन्द विभोर दिखाई देते हैं और कहीं चक्रेश्वरी, पद्मावती, ज्वालामालिनी, सरस्वती आदि जिन शासन रक्षिका देवियों की मुद्राएँ, अद्भुत भाव प्रेरक अनेक देवियों के अलंकृत अवयव अपनी भाव-भंगियों से मानो सुषमा ही उड़ेल रहे हैं।

गुप्तकालीन मन्दिर—किले के दक्षिणी पश्चिमी कोने पर वराह का प्राचीन मन्दिर खंडितावस्था में मौजूद है। उसके निर्माण के सम्बन्ध में निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता। नीचे के मैदान में गुप्त कालीन विष्णु

मन्दिर बना हुआ है। यह पूर्ण रूप से सुरक्षित है। भारतीय कलाविद् इसके कारण ही देवगढ़ से परिचित हैं। यह मन्दिर गुप्त काल के बाद किसी समय बना है। कहा जाता है कि गुप्तकाल में मन्दिरों के शिखर नहीं बनाये जाते थे। परन्तु इसमें शिखर होने के चिह्न मौजूद हैं। मालूम होता है कि इसका शिखर खण्डित हो गया है। यह मन्दिर जिन पाषाणखण्डों से बना है, वे अत्यन्त कलापूर्ण और सुन्दर हैं।[५] इस मन्दिर की कला के सम्बन्ध में प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान स्मिथ साहब कहते हैं कि देवगढ़ में गुप्तकाल का जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण और आकर्षक स्थापत्य है वह देवगढ़ का पत्थर का बना हुआ एक छोटा-सा मन्दिर है। यह ईसा की छठी अथवा पाँचवीं शताब्दी का बना है। इस मन्दिर की दीवारों पर जो प्रस्तरफलक लगे हैं उनमें भारतीय मूर्त्तिकला के कुछ बहुत ही बढ़िया नमूने अंकित हैं।[६]

इस मन्दिर की खुदाई के समय जो मूर्त्तियाँ मिलीं उनमें से एक में पंचवटी का वह दृश्य अंकित है जहाँ लक्ष्मण ने रावण की बहन सूर्पणखा की नाक काटी थी। अन्य एक पाषाण में राम और सुग्रीव के परस्पर मिलन का अपूर्व दृश्य अंकित है। एक अन्य पत्थर में राम लक्ष्मण का शबरी के आश्रम में जाने का दृश्य दिखाया गया है। इसी तरह के अन्य दृश्य भी रहे होंगे। रामायण की कथा के यह दृश्य अन्यत्र मेरे अवलोकन में नहीं आए। यहीं पर नारायण की मूर्त्ति है और एक पत्थर में गजेन्द्र मोक्ष का दृश्य भी उत्कीर्ण है। दक्षिण की ओर दीवार में शेषशायी विष्णु की मूर्त्ति है जो बड़े आकार के लाल पत्थर में खोदी गई है। इससे यह मन्दिर भी अपना विशेष महत्त्व रखता है।

जैन मन्दिर और मूर्त्तिकला—देवगढ़ में इस समय ३१ जैन मन्दिर हैं जिनकी स्थापत्यकला मध्यभारत की अपूर्व देन है। इनमें से नं० ४ के मन्दिर में तीर्थंकर की माता सोती हुई स्वप्नावस्था में विचार-मग्न मुद्रा में दिखलायी गई है। नं० ५ का मन्दिर सहस्रकूट चैत्यालय है जिसकी कलापूर्ण मूर्त्तियाँ अपूर्व दृश्य दिखलाती हैं। इस मन्दिर के चारों ओर १००८ प्रतिमाएँ खुदी

---

५ देखो, दयाराम साहनी, भारतीय पुरातत्व की रिपोर्ट।

६ **The most important and interesting stone temple of Gupta age is one of moderate dimensions at Deogarh, which may be assigned to the first half of sixth or perhaps to the fifth century. The panels of the walls contain some of the finest specimens of Indian sculpture.**

है। बाहर सं० ११२० का लेख भी उत्कीर्णित है, जो सम्भवतः इस मन्दिर के निर्माण काल का ही द्योतक है। नं० ११ के मन्दिर में दो शिलाओं पर चौबीस तीर्थंकरों की बारह-बारह प्रतिमाएँ अंकित हैं। ये सभी मूर्तियाँ प्रशान्त मुद्रा को लिए हुए हैं।

इन सब मन्दिरों में सबसे विशाल मन्दिर नं० १२ है जो शांतिनाथ मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। जिसके चारों ओर अनेक कलाकृतियाँ और चित्र अंकित हैं। इसमें शान्तिनाथ भगवान की १२ फुट उत्तुंग प्रतिमा विराजमान है, जो दर्शक को अपनी ओर आकृष्ट करती है। चारों कोनों पर अम्बिका देवी की चार मूर्तियाँ हैं जो मूर्तिकला के गुणों से समन्वित हैं। इस मन्दिर की बाहरी दीवाल पर जो २४ यक्ष यक्षिणियों की सुन्दर कलाकृतियाँ बनी हुई हैं, इनकी आकृतियों से भव्यता टपकती है। साथ ही १८ लिपियों वाला लेख भी बरामदे में उत्कीर्णित है। इन सब कारणों से यह मन्दिर अपनी सानी नहीं रखता।

देवगढ़ के जैन मन्दिरों का निर्माण उत्तर भारत के विकसित आर्य नागर शैली में हुआ है। यह दक्षिण की द्रविड़ शैली से अत्यन्त भिन्न है। नागर शैली का विकास गुप्तकाल में हुआ है। देवगढ़ में तो उक्त शैली का विकास पाया ही जाता है किन्तु खजुराहो आदि के जैन मन्दिरों में भी इसी कला का विकास देखा जाता है। यह कला पूर्ण रूप से भारतीय है और प्राग्मुस्लिम-कालीन है। इतना ही नहीं, किन्तु समस्त मध्य प्रान्त की कला इसी नागर शैली से ओत-प्रोत है। इस कला को गुप्त, गुर्जर प्रतिहार और चंदेलवंशी राजाओं के राज्यकाल में पल्लवित और विकसित होने का अवसर मिला है।

देवगढ़ की मूर्तियों में दो प्रकार की कला देखी जाती है। प्रथम प्रकार की कला में कलाकृतियाँ अपने परिकरों से अंकित देखी जाती हैं, जैसे चामरधारी यक्ष-यक्षिणियाँ। सम्पूर्ण प्रस्तराकार कृति में नीचे तीर्थंकर का विस्तृत आसन और दोनों पार्श्वों में यक्षादि अभिषेक-कलश लिए हुए दिखलाए गए हैं। किन्तु दूसरे प्रकार की कला मुख्य मूर्ति पर ही अंकित है, उसमें अन्य अलंकरण और कलाकृतियाँ गौण हो गई हैं। मालूम होता है इस युग में साम्प्रदायिक विद्वेष नहीं था, और न धर्मान्धता ही थी। इसीसे इस युग में भारतीय कला का विकास जैनों, वैष्णवों और शैवों में निर्विरोध हुआ है। प्रस्तुत देवगढ़ जैन और हिन्दू संस्कृति का सन्धिस्थल रहा है। तीर्थंकर मूर्तियाँ, सरस्वती की मूर्ति, पंच परमेष्ठियों की मूर्तियाँ, कलापूर्ण मानस्तम्भ,

अनेक शिलालेख और पौराणिक दृश्य अंकित हैं। साथ ही वराह का मन्दिर, गुफा में शिवलिंग, सूर्य भगवान की मुद्रा, गणेश मूर्त्ति, भारत के पौराणिक दृश्य, गजेन्द्र मोक्ष आदि कलात्मक सामग्री देवगढ़ की महत्ता की द्योतक है।

भारतीय पुरातत्व विभाग को देवगढ़ से २०० शिलालेख मिले हैं जो जैन मन्दिरों, मूर्त्तियों और गुफाओं आदि में अंकित हैं। इसमें साठ शिलालेख ऐसे हैं जिनमें समय का उल्लेख दिया हुआ है। ये शिलालेख सं० ६०६ से १८७६ तक के उपलब्ध हैं। इनमें सं० ६०६ सन् ५५२ का लेख नाहर घाटी से प्राप्त हुआ था। इसमें सूर्य वंशी स्वामी भट्ट का उल्लेख है। सं० ९१९ का शिलालेख जैन संस्कृति की दृष्टि से प्राचीन है। इस लेख में भोज देव के समय में पंच महाशब्द प्राप्त महासामन्त विष्णुराम के शासन में इस लुअच्छगिरि के शान्तिनाथ मन्दिर के निकट गोष्ठिक वजुआ द्वारा निर्मित मानस्तम्भ आचार्य कमलदेव के शिष्य आचार्य श्रीदेव द्वारा वि० सं० ९१९ आश्विन १४ वृहस्पतिवार के दिन उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में प्रतिष्ठित किया गया था। इसी तरह अन्य छोटे-छोटे लेख भी जैन संस्कृति की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इस तरह देवगढ़ मध्यप्रदेश की अपूर्व देन है।

अहार क्षेत्र—बुंदेलखण्ड में खजुराहो की तरह अहार क्षेत्र भी एक ऐतिहासिक स्थान है। देवगढ़ की तरह यहाँ प्राचीन मूर्त्तियाँ और लेख पाए जाते हैं। उपलब्ध मूर्त्तियों के शिलालेखों से जान पड़ता है कि विक्रम की ११ वीं से १३ वीं शताब्दी तक के लेखों में अहार की प्राचीन बस्ती का नाम 'मदनेशसागर पुर' था।* और उसके शासक श्री मदनवर्मा थे, जो चंदेलवंश के यशस्वी नक्षत्र थे। इस नगर के पास जो विशाल सरोवर बना हुआ है वह वर्त्तमान 'मदनसागर' नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके किनारे अनेक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुए हैं। मदनवर्मा का शासन विक्रम की ११ वीं शताब्दी में विद्यमान था। इसके बाद ही किसी समय इसका नाम 'अहार' प्रसिद्ध हुआ होगा।

यहाँ के उपलब्ध मूर्त्तिलेखों में खण्डेलवाल, जैसवाल, मेडवाल, लमेचू, पौरपाट (परवार) गृहपति, गोलापूर्व, गोलाराड, अवधपुरिया और गर्गराट् आदि अनेक उपजातियों के उल्लेख मिलते हैं, जो उनकी धार्मिक रुचि के द्योतक हैं। उनसे यह भी स्पष्ट जाना जाता है कि उस काल में यह खूब

* सं० १२०८ और १२३७ के लेखों में मदनेशसागरपुर का नामांकन हुआ है; देखो, अनेकान्त, वर्ष ९ कि० १०, पृष्ठ ३८५-६।

सम्पन्न रहा होगा। क्योंकि वहाँ विविध उपजातियों के जैन जन रहते थे और गृहस्थोचित षट्कर्मों का पालन करते थे। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि यह स्थान ७०० वर्षों तक जैन संस्कृति के आचार-विचारों से परिपूर्ण रहा है, क्योंकि यहाँ वि० सं० ११२३ और ११६६ से लेकर वि० सं० १६६८ तक की प्राचीन मूर्त्तियाँ और लेख उपलब्ध होते हैं। ये सब लेख ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण हैं और अतीत के गौरव की पूर्व झांकी प्रस्तुत करते हैं। यदि वहाँ खुदाई करायी जाए तो संभवतः और भी पुरातन जैन संस्कृति के अवशेष प्राप्त हो सकते है। इन लेखों में सबसे अधिक लेख जैसवालों और गोलापूर्वों में पाए जाते हैं। उनसे उन जातियों के धर्मप्रेम की झलक मिलती है।

संवत् १२१३ के एक लेख में भट्टारक माणिक्य देव तथा गुण्यदेव का नाम उत्कीर्ण है। और सं० १२१६ के लेख में श्री सागर सेन सैद्धान्तिक, आर्यिका जयश्री और चेली रतन श्री का उल्लेख है। सं० १२१६ के एक दूसरे लेख में कुटकान्वयी पंडित लक्ष्मण देव शिष्य आर्य देव आर्यिका लक्ष्मण श्री चेली चारित्रश्री और भ्राता लिम्बदेव का नाम अंकित है। सं० १२१६ के एक तीसरे लेख में कुटकान्वयी पंडित मंगल देव और उनके शिष्य भ० पद्मदेव का नामांकन है। सं० १५४८ के लेख में भट्टारक 'जिनचन्द' और साह जीवराज पापड़ीवाल का नामोल्लेख है। १५०२ के एक लेख में गुणकीर्ति के पट्टधर मलयकीर्ति के द्वारा प्रतिष्ठा कराने का भी उल्लेख पाया जाता है।[८] इसी तरह अन्य अनेक लेखों में जो विद्वानों भट्टारकों या श्रावक श्राविकाओं के नाम का अंकन मिलता है, वह इतिहास की दृष्टि में महत्वपूर्ण है।

अहार क्षेत्र में भगवान् शान्तिनाथ की प्रतिष्ठा कराने वाला गृहपति वंश जैन धर्म का अनुयायी था। जैन धर्म की परम्परा उसके वंश में पहले से चली आ रही थी, क्योंकि इस वंश के देवपाल ने बाणपुर के सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण कराया था ऐसा शांतिनाथ की मूर्त्ति के सं० १२३७ के लेख के प्रथम पद से प्रकट है।[९] बाणपुर का उक्त जिनालय कब बना यह निश्चित नहीं है किन्तु सं० १२३७ के लेख में जो उल्लेख है उससे पहले बना है। लेख

८ देखो, अनेकान्त, वर्ष ६ किरण १० तथा वर्ष १० किरण १, २, ३ आदि में प्रकाशित अहार के लेख।

९ गृहपतिवंशसरोरुह-सहस्ररश्मिः सहस्रकूट यः।
बाणपुरे व्याधितासीत श्रीमानिह देवपाल इति ॥

में प्रयुक्त देवपाल रत्नपाल रल्हण, गल्हण, जाहड़ और उदयचन्द का नाम आता है। गल्हण ने शान्तिनाथ का चैत्यालय बनवाया था और दूसरा चैत्यालय मदन सागरपुर में निर्माण कराया था और इनके पुत्र जाहड और उदयचन्द्र ने इस मूर्ति का निर्माण कराया है। इससे इस कुटुम्ब की धार्मिक परिणति का कितना ही आभास मिल जाता है और यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस कुटम्ब में मन्दिर-निर्माण आदि का कार्य परम्परागत था।

प्रस्तुत मदन सागरपुर का नाम अहार क्यों और कैसे पड़ा यह विचारणीय है। अहार के उक्त मूर्ति लेखों में पाषा शाह का कोई उल्लेख नहीं है। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि मन्दिरादि का निर्माण उनके द्वारा हुआ है। और मुनि को अहार देने से इसका नाम अहार हुआ है। इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाणों का अन्वेषण करना जरूरी है जिससे तथ्य प्रकाश में आ सके। इस तरह मदनेश सागरपुर और अहार जैन संस्कृति के केन्द्र रहे हैं। बानपुर अहार क्षेत्र से ३-४ मील की दूरी पर अवस्थित हैं। यह भी एक प्राचीन स्थान है। जतारा ग्राम भी १२-१३ की सदी के गौरव से उद्दीपित है, वहाँ भी जैन धर्म की विशेष प्रतिष्ठा रही है। [क्रमशः

मोक्ष सुख

[जैन कथानक]

कन्नौज देश से लाया हुआ एक सुन्दर घोड़ा अरहन्नक ने राजा जितशत्रु को उपहार स्वरूप दिया। घोड़े पर चढ़कर राजा जितशत्रु घूमने निकले।

घोड़ा खूब तेजस्वी था। अतः थोड़ी देर में ही वह साथ के अन्य लोगों को पीछे छोड़कर बहुत आगे निकल गया एवं शहर से बाहर वन में प्रवेश कर गया। राजा उस वन में राह भूल गए।

एक तो गर्मी का मौसम, फिर दिन भर घोड़े पर चढ़े-चढ़े यह दौड़ भाग। राजा को बहुत जोर से प्यास लगी किन्तु जल कहाँ मिले? उस वन में तो कहीं जल दिखायी ही नहीं पड़ रहा था। अन्ततः जब वह घोड़ा एक सघन वृक्ष के नीचे आ खड़ा हुआ वे घोड़े से नीचे उतरे। उतरते ही मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़े।

भाग्यवश उस दिन एक भील युवक उस वन में शिकार की खोज में आया था। राजा के मूर्च्छित होकर गिरने के कुछ देर पश्चात् ही वह उधर से गुजरा। किसी को मूर्च्छित पड़े देखकर वहाँ आया और उनके मुँह पर आँखों पर पानी के छींटे डालने लगा। शीतल जल के स्पर्श से राजा की चेतना लौटी। उन्होंने पानी माँगा। भील युवक ने चमड़े के थैले में भरा हुआ जल उन्हें पीने को दिया। पानी पीकर राजा स्वस्थ हो उठे। भील ने अपने साथ लायी रोटी एवं फल-मूल भी उन्हें खाने को दिए।

राजा को वह सूखी रोटी एवं अन्य फल-मूल अमृत जैसे लगे। बोले—तुमने आज मुझे नया जीवन दिया है। तुम्हारे ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। प्रत्युत्तर में उसने कहा—मैंने तो कुछ नहीं किया। भूखे प्यासे मनुष्य को रोटी-पानी देना तो मनुष्य का सामान्य कर्त्तव्य है।

यह सुनकर राजा और प्रसन्न हो उठे। सोचने लगे—जिन्हें लोग जंगली कहते हैं उनमें इतनी मानवता? राजा ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—भाई, मैं यहाँ का राजा हूँ, किन्तु अभी मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है जो तुम्हें दे सकूँ। तुम यदि कभी शहर आओ तो राजमहल आना, तभी···

इसमें देने-लेने का क्या है? मैंने तुमको रोटी-पानी बेचा थोड़े ही है?

राजा की आँखें भर आयीं। बोले—ऐसा नहीं, फिरभी एक बार राजमहल में आना।

राजमहल कहने से लोग समझ जाएँगे तो? तुम्हारा नाम ठिकाना क्या है?

उसकी सरलता पर राजा हँस पड़े। बोले—उसकी कोई आवश्यकता नहीं होगी। राजमहल कहने से ही लोग समझ जाएँगे। तुम्हें मकान दिखा देंगे। क्यों आओगे तो?

भील मनुष्य ने सिर झुकाया। बोला—चलो, तुम्हें रास्ते तक छोड़ आऊँ।

करीब दो मास पश्चात् भील युवक शहर आया। लोगों से पूछा—भाई, राजमहल किधर है?

लोग विस्मित हो गए किन्तु उसे रास्ता बता दिया।

राजमहल के सम्मुख आकर बेचारा युवक तो स्तब्ध रह गया। उस आदमी का इतना बड़ा मकान है? इतने सिपाही पहरेदार? फिर जैसे ही वह भीतर जाने लगा एक पहरेदार ने आकर उसको रोक लिया। बोला—वहाँ कहाँ जा रहे हो?

भील युवक ने कहा—भाई, यहाँ जो राजा रहते हैं उनसे मिलने जा रहा हूँ।

सिपाही ने मुँह बनाकर कहा—राजा से मिलने जा रहा हूँ! जबान सम्भाल कर बोल। भाँग पीकर आया है क्या?

शायद उस दिन उसे धक्का खाकर ही लौट जाना पड़ता किन्तु सौभाग्यवश महल की खिड़की से राजा ने उसे देख लिया। देखते ही दौड़ कर नीचे आए और सम्मान सहित भीतर ले गए।

भील युवक राजमहल को जितना ही देखता गया उतना ही आश्चर्य चकित होता गया। सोचने लगा—कितने बड़े-बड़े कमरे हैं? कितने सुन्दर ढंग से सजाए हुए हैं? कितनी दास-दासियाँ हैं? फिर राजा ने जब उसे मखमली सुन्दर गद्दे पर बैठाया तो उसे लगा ही नहीं कि वह किसी आसन पर बैठा है।

उसे साथ लेकर राजा खाने बैठे। सोने के थाल में सोने की कटोरियाँ थीं और कितने प्रकार के थे व्यंजन और कितने प्रकार की मिठाइयाँ। ऐसी

पूड़ियाँ और कचौड़ियाँ तो उसने कभी आँखों से देखी ही नहीं थीं। फिर खाकर तो उनके स्वाद और गन्ध में जैसे आविष्ट ही हो गया।

खाने के पश्चात् राजा ने स्वयं उसे सब कुछ घूम-घूम कर दिखाया। वह तो देख-देखकर अवाक् होता जा रहा था। सोच ही नहीं सका कि वह सब स्वप्न था या सत्य ? या माया ? मनुष्य इतनी सुख-समृद्धि का भोग करता है यह तो कभी उसकी कल्पना में भी नहीं आया था।

राजा के आग्रह पर उसने तीन-चार दिन वहीं बिताए। तदुपरान्त उसका मन वन लौट जाने को व्याकुल हो गया। यहाँ उसने जो कुछ देखा, सुना, अनुभव किया वह सब घर के लोगों को बताना जो था। राजा ने बहुत आग्रह किया लेकिन वह और नहीं रुका।

भील युवक जब वन की राह पकड़े जा रहा था उसका तो पैर ही जमीन पर नहीं पड़ रहा था। मानो हवा में ही उड़ रहा हो।

जब वह घर के लोगों एवं संगी-साथियों से मिला तो वे सभी पूछने लगे—तुमने वहाँ क्या देखा ? क्या खाया ?

किन्तु वह तो उन सब चीजों का नाम ही नहीं जानता था। जानता भी तो क्या वे लोग समझ सकते थे ? अतः केवल बोलने लगा—आह ! क्या देखा ! आह ! क्या खाया ! क्या था उनका स्वाद ! और कितने मीठे थे वे !

एक ने पूछा—शांखालू की तरह ?

अरे नहीं। उससे भी बहुत मीठे बहुत स्वादिष्ट। इससे अधिक व्यक्त करने के लिए न तो उसके पास शब्द थे न उपमा थी।

भगवान महावीर ने यह कथा सुनाकर कहा—आयुष्मन् ! बनवासी भील जिस प्रकार राजमहल के सुखों एवं आनन्द को व्यक्त नहीं कर सका, उसी प्रकार जो मोक्ष सुख अनुभव कर रहे हैं, वे भी मोक्ष सुख और आनन्द को व्यक्त नहीं कर सकते। वह केवल अनुभव किया जा सकता है, व्यक्त नहीं किया जा सकता।

समण सुत्तम्

अनु० श्री मानीराम

सुहं बसामो जीवामो जेसिं णो नत्थि किंचण।
मिहिलाए उज्झमाणीए न मे उज्झइ किंचण॥

समण सुत्तं १०७

जलती है मिथिला तो उसमें
मेरा क्या जलने वाला है?
पुत्र, नारि, व्यवसाय मुक्त को
अब क्या सुख छलने वाला है?

चत्तपुत्तकलत्तस्स निव्वावारस्स भिक्खुणो।
पियं न विज्जई किंचि अप्पियं पि न विज्जए॥

समण सुत्तं १०८

पीछे छूट गया अपनापन
भ्रम था वह, सुख से जीता हूँ
प्रिय-अप्रिय कुछ नहीं कहीं भी
घूँट शांति के मैं पीता हूँ।

अप्पा नई वेयरणी अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेनु अप्पा मे नंदणं वणं॥

समण सुत्तं १२२

मैं ही हूँ अपना नंदन वन
मैं वैतरणी नदी अपावन।
मैं ही कंटक वृक्ष स्वयं का
मैं ही धेनु हूँ काम दुहावन।

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ॥

समण सुत्तं १२३

मैं ही बुनता और खोलता
अपने सुख के दुःख के तार
मैं ही अपना मित्र-शत्रु हूँ
उचितानुचित कृतित्व विचार।

जो सहम्सं सहस्साणं संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ॥

समण सुत्तं १२५

लाख-लाख को जीता रण में
पर अपने से हारा
परम जयी है वही वीरवर
एक शत्रु को मारा।

अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेहए॥

समण सुत्तं १२६

जग को जीता, तो क्या पाया?
अपनी विजय करो।
अपना स्वयं नियामक बन कर
शाश्वत शांति वरो।

वरं मे अप्पा दंतो संजमेण तवेण य।
माऽहं परेहिं दम्मंतो बंधणेहिं वहेहि य॥

समण सुत्तं १२८

बंधन-वध से दमन करेंगे
और लोग इससे तो यह वर
संयम तप से खुद ही करलूं
मैं अपने भावों का संवर।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

कोई ऐसा कार्य करना होगा जिससे हानि न होकर लोक कल्याण हो—ऐसा सोचकर देवगण पहले चक्रवर्ती के समीप गए। उन्हें "जय हो, जय हो" शब्द से आशीर्वाद देकर प्रियभाषी देव मन्त्रियों की तरह युक्ति-युक्त ये वाक्य बोले :

"हे नरदेव, इन्द्र जैसे दैत्यों पर जय प्राप्त करता है उसी प्रकार आपने छः खण्ड भरत क्षेत्र के समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त की है। यह आपके लिए उचित ही है। हे राजेन्द्र, पराक्रम और तेज में समस्त राजाओं रूपी मृगों के मध्य आप शरभ (अष्टापद) तुल्य हैं। आपका प्रतिस्पर्द्धी कोई नहीं है। कलश के जल में मन्थन करने से जैसे मक्खन पाने की इच्छा पूर्ण नहीं होती उसी प्रकार आपकी रण स्पृहा पूर्ण नहीं हो सकी। इसीलिए आपने स्वभ्राता के साथ युद्ध आरम्भ किया है। किन्तु यह युद्ध तो एक हाथ का दूसरे हाथ पर आघात करना है। वृहद् हस्ती जिस प्रकार अपने गण्डस्थल को वृहद् वृक्ष से रगड़ता है गण्डस्थल में उत्पन्न खुजलाहट के कारण, उसी प्रकार आप भी जो भाई के साथ युद्ध कर रहे हैं उसका कारण आपके हाथों की खुजलाहट है। वन के उन्मत्त हस्तियों की उन्मत्तता से वन जैसे विनष्ट हो जाता है उसी प्रकार आपके बाहुओं की खुजलाहट से जगत विनष्ट हो जाएगा। मांसभोजी मनुष्य जैसे जिह्वा स्वाद की तृप्ति के लिए पशु-पक्षियों को विनष्ट करता है उसी प्रकार आप भी क्रीड़ा वश जगत संहार के लिए उद्योगी हुए हैं। चन्द्रमा से अग्नि वर्षण जैसे उचित नहीं होता उसी प्रकार जगत्त्राता दयालु ऋषभ देव के पुत्र का निज भ्राता के साथ युद्ध करना उचित नहीं है। हे पृथ्वी रमण! संयमी जैसे भोग से मुँह फेर लेते हैं उसी प्रकार आप युद्ध से निवृत होकर स्व-स्थान को प्रत्यावर्तन कीजिए। आप यहाँ आए इसलिए आपका छोटा भाई बाहुबली भी आपके सम्मुखीन होने आया है। कारण से ही कार्य होता है। संसार नाश रूपी पाप से निवृत होने पर आपका कल्याण होगा। युद्ध बन्द होने पर दोनों पक्षों की सेना का कुशल होगा। आपके सैन्य भार से पृथ्वी जो कम्पित हो रही है वह स्थिर हो जाएगी इससे पृथ्वी के गर्भ में निवास

करने वाले भवन पति आदि (व्यंतर देव) सुखी होंगे, आपकी सैन्य द्वारा मर्दन के अभाव में पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, प्रजागण और समस्त प्राणियों के भय दूर होंगे। और आपके युद्ध के कारण पृथ्वी विनष्ट होने का भय दूर हो जाने से समस्त देवगण सुख से रहेंगे।"

इस प्रकार जब देवताओं ने काम की बात समाप्त की तब महाराज भरत मेघ गम्भीर स्वर में बोले—"हे देवगण, आपके सिवाय जग कल्याण की बात और कौन कहेगा? प्रायः लोग तमाशा देखने की इच्छा से ऐसे कार्य से उदास रहते हैं। आपने कल्याण कामना से युद्ध के जिन कारणों की कल्पना की वह वैसी नहीं है, कारण दूसरा है। किसी कार्य का मूल जाने बिना यदि कुछ कहा जाता है वह निष्फल ही होता है चाहे वह वृहस्पति द्वारा ही क्यों न कहा गया हो? मैं बलवान हूँ यह सोचकर मैं युद्ध करना स्थिर नहीं करता। कारण तेज अधिक हो जाने पर भी उसे कोई भी पर्वत पर लेपन नहीं करता। भरत क्षेत्र के छः खण्डों को जीत लेने पर मेरा कोई प्रतिस्पर्द्धी नहीं रहा यह मैं नहीं मानता। कारण शत्रु के समान प्रतिस्पर्द्धी और हार जीत का कारणभूत बाहुबली और मेरे बीच में भाग्यवश ही विरोध हुआ है। पहले निन्दाभीरु, लजालु, विवेकी, विनयी एवं विद्वान बाहुबली मुझे पिता तुल्य मानता था किन्तु साठ हजार वर्ष पश्चात् जब मैं दिग्विजय कर लौटा तो देखा बाहुबली बहुत बदल गया है। अब वह अन्य-सा हो गया है। इस प्रकार होने का कारण इतने दिनों तक न मिलना ही लगता है। बारह वर्षों तक राज्याभिषेक का उत्सव चला किन्तु वह नहीं आया। मैंने सोचा—आलस्यवश ही वह नहीं आया होगा तब उसे बुलाने को दूत भेजा तब भी वह नहीं आया। मैंने उसे क्रोध या लोभ के वशीभूत होकर नहीं बुलाया था किन्तु चक्र तब तक नगर में प्रवेश नहीं करता जब तक एक भी राजा चक्रवर्ती के अधीन न होकर स्वतन्त्र रहेगा। अतः मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। इधर चक्र नगर में प्रवेश नहीं करता है उधर बाहुबली झुकता नहीं है। लगता है जैसे दोनों स्पर्द्धा कर रहे हैं। एक विकट संकट में पड़ गया हूँ मैं। मेरा मनस्वी भाई यदि एक बार भी मेरे पास आए और अतिथि की तरह पूजा ग्रहण करे तो इच्छानुसार भूमि भी वह मुझसे ले सकता है। चक्र के नगर प्रवेश न करने के कारण ही तो मुझे युद्ध करना पड़ रहा है। युद्ध का दूसरा कोई कारण नहीं है। नत नहीं होने वाले भाई से मुझे किसी प्रकार का मान पाने की इच्छा नहीं है।"

देवता बोले—"राजन ! युद्ध का अवश्य ही कोई बड़ा कारण है। आप जैसे पुरुष किसी छोटे कारण से ऐसी प्रवृत्ति कभी नहीं करते। अब हम बाहुबली के पास जाकर उनको उपदेश देंगे और युग क्षय रूप भावी प्रजानाश का निवारण करेंगे। लगता है वह भी आपकी तरह युद्ध का अन्य कोई कारण बताएँगे। फिर भी आप लोगों का ऐसा अधम युद्ध करना उचित नहीं है। महान् पुरुष तो दृष्टि वाणी बाहु और दण्डादि से परस्पर युद्ध करते हैं ताकि निरपराध हस्ती आदि प्राणियों का विनाश न हो।"

भरत चक्रवर्ती ने देवताओं का यह कथन स्वीकार किया। तब वे दूसरी ओर की सेना के मध्यवर्ती बाहुबली के निकट गए। उन्हें देखकर वे आश्चर्य चकित होकर सोचने लगे—अहो, बाहुबली की देह तो गूढ़ गुण सम्पन्न मूर्त्ति से ही मानो बनी है। फिर वे बोले—"हे ऋषभ नन्दन ! हे जगत् नेत्र रूपी चकोर को आनन्द देने वाले चन्द्र ! आप चिर विजयी हों एवं आनन्द पूर्वक रहें। आप समुद्र की तरह मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करेंगे एवं डरपोक जिस प्रकार युद्ध से डरता है उसी प्रकार आप निन्दा से डरते हैं। आपको सम्पत्ति का अभिमान नहीं है दूसरे के ऐश्वर्य से आपको ईर्ष्या नहीं है। दुर्विनीत को दण्ड देते हैं एवं जगत को अभय प्रदान करने वाले आप ऋषभ नाथ के योग्य पुत्र हैं। आपने अपने बड़े भाई के साथ भयंकर युद्ध करना स्थिर किया है यह उचित नहीं है। जिस प्रकार अमृत से मृत्यु सम्भव नहीं है उसी प्रकार आपके द्वारा यह कार्य भी सम्भव नहीं है। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है अतः दुष्ट लोगों की मित्रता की भाँति इस युद्ध का परित्याग करिए। मन्त्र से जिस प्रकार बड़े-बड़े साँपों को लौटाया जाता है उसी प्रकार स्व आज्ञा से वीर सैनिकों को युद्ध से निवृत करिए। तदुपरान्त अपने अग्रज भरत के पास जाकर उनकी अधीनता स्वीकार कीजिए। इससे आपकी प्रशंसा ही होगी कि शक्तिशाली होने पर भी आप विनयी हैं। भरत राजा द्वारा विजय प्राप्त छः खण्ड भरत क्षेत्र का आपके स्व उपार्जित क्षेत्र की तरह उपभोग कीजिए। कारण आप दोनों में कोई पार्थक्य नहीं है।"

ऐसा कहकर जब देवगण मेघ की तरह शान्त हो गए तब स्मित हास्य के साथ बाहुबली गम्भीर स्वर में बोले—"हे देवगण, मेरे युद्ध का यथार्थ कारण न जानने के कारण ही सरलमना आपलोग ऐसा कह रहे हैं। आप पिता के भक्त हैं मैं उनका पुत्र हूँ। इसी सम्बन्ध के कारण आप मुझे जो कुछ कह रहे हैं वह उचित ही हैं। पहले दीक्षा के समय पिता जी ने जैसे याचकों

को सुवर्णादि दिया उसी प्रकार राज्य मेरे और भरत के मध्य विभाजित कर दिया था। मैं तो पिताजी ने जो कुछ दिया उसी से सन्तुष्ट था। कारण केवल धन के लिए क्यों किसी से वैर करूँ। किन्तु समुद्र में जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है उसी प्रकार भरत छ खण्ड रूपी समुद्र में छोटी मछली की तरह रहने वाले राजाओं को बड़े मच्छ भरत ने खा डाला। पेटू जिस प्रकार भोजन से कभी सन्तुष्ट नहीं होता उसी प्रकार भरत इतने राज्यों को जीतने के पश्चात् भी सन्तुष्ट नहीं हुए हैं। उन्होंने अपने भाइयों के राज्य छीन लिए अपने छोटे भाइयों के राज्य छीन कर उन्होने अपना बड़प्पन स्वयं ही खो दिया। इतने दिन तक लोग जिस प्रकार पीतल को सोना और काँच को मणि समझ लेते हैं उसी प्रकार भ्रान्ति से मैंने भी भरत को गुरुजन समझा था। पिता द्वारा प्रदत्त व पूर्व पुरुषों की प्रदत्त भूमि अपने छोटे भाइयों से कोई साधारण राजा भी तब तक नहीं छीनता जब तक वे कोई अपराध न करें। फिर भरत ने ऐसा क्यों किया? छोटे भाइयों का राज्य छीनने में क्या भरत को लज्जा नहीं आती, उन्होंने मेरा राज्य लेने के लिए मुझे बुलवाया था। जहाज जैसे समुद्र का अतिक्रम कर तट के समीपवर्ती किसी पर्वत से धक्का खाता है उसी प्रकार भरत-खण्ड के समस्त राजाओं को जीतकर भरत ने मुझसे धक्का खाया है। लोभी मर्यादाहीन और राक्षस-से निर्दयी भरत को जब मेरे भाइयों ने भाई समझने में लज्जा महसूस की तब मैं कौन से गुण के कारण उन्हें मानूँगा। हे देवगण, आप सभासदों की तरह मध्यस्थ होकर बोलिए। भरत यदि स्व बल से मुझे वशीभूत कर सके तो करें। क्षत्रियों का यही स्वाधीन मार्ग है। इतना होने पर भी यदि वे अभी लौटना सोच रहे हों सकुशल लौट सकते हैं। कारण मैं उनके जैसा लोभी नहीं हूँ कि लौटते समय उन्हें किसी प्रकार की क्षति पहुँचाऊँगा। यह कैसे सम्भव है कि उनके द्वारा विजित समस्त भरत का मैं उपभोग करूँ। केशरी सिंह क्या किसी का दिया हुआ खाद्य खाता है? कभी नहीं। उन्हें भरत क्षेत्र को जय करने में साठ हजार वर्ष लगे हैं यदि मैं उसे लेना चाहता तो उसी समय ले लेता। किन्तु इतने वर्षों के परिश्रम से प्राप्त उनके भरत क्षेत्र का वैभव धनपति के धन की तरह भाई होकर मैं कैसे लूँ। चम्पक का फल खाकर हाथी जैसे मदान्ध हो जाता है उसी प्रकार छः खण्ड के राजाओं को जीतकर भरत यदि अन्धे हो गए हैं तो वे भी सुख से नहीं रह सकेंगे। मैं तो उनके वैभव को छीना हुआ ही देखता हूँ। मैं तो जानबूझ कर उसकी उपेक्षा करता हूँ। अभी मुझे देने की अमानत हो ऐसे उनके मन्त्री ही उनका भण्डार, हाथी, घोड़ा

आदि और यश मुझे अर्पण करने के लिए ही भरत को यहाँ लाए हैं। इसलिए हे देवगण, यदि आप उनका हित चाहते हैं तो उन्हें युद्ध करने से रोकिए। यदि वे युद्ध नहीं करेंगे तो मैं भी नहीं करूँगा।"

मेघ गर्जन की तरह उनका ऐसा उत्कट अर्थात् अभिमान पूर्ण वाक्य सुनकर देवगण विस्मित हो गए और पुनः उन्हें कहने लगे—"एक ओर चक्रवर्ती युद्ध का कारण चक्र का नगर में प्रवेश न होना बतलाते हैं। इससे उनके गुरु भी उन्हें रोक नहीं सकेंगे या निरुत्तर नहीं कर सकेंगे। दूसरी ओर आप कहते है जो युद्ध करेगा उसके साथ मैं भी युद्ध करूँगा तब इससे इन्द्र भी आपको युद्ध करने से रोकने में असमर्थ हैं। आप दोनों ऋषभ स्वामी के दृढ़ संसर्ग से सुशोभित महाबुद्धिमान विवेकी जगत् रक्षक और दयावान् है फिर भी जगत् के लिए दुर्भाग्य रूप यह युद्ध उपस्थित हुआ है। हे वीर, प्रार्थना पूर्ण करने में आप कल्पवृक्ष तुल्य हैं। अतः आपसे यही प्रार्थना है आप उत्तम युद्ध करिए अधम युद्ध नहीं। कारण आप दोनों ही तेजस्वी हैं। अधम युद्ध से अनेक लोगों के विनाश हो जाने से असमय में ही प्रलय हो जाती है। इसलिए आपलोगों के लिए उचित है कि आप दोनों दृष्टि युद्धादि करिए। इससे आपका मान भी बढ़ेगा और लोक नाश भी नहीं होगा।"

बाहुबली ने देवताओं का कथन स्वीकार कर लिया। एतदर्थ उनका युद्ध देखने के लिए नगरवासियों की तरह देवता भी वहीं अवस्थित हो गए।

तब एक बलवान छड़ीदार बाहुबली की आज्ञा से गजपृष्ठ पर आरोहण कर गज की भाँति गर्जन करते-करते बाहुबली के सैनिकों को बोलने लगा— "हे वीर सैनिक गण, तुमलोगों वांछित पुत्र लाभ की तरह दीर्घ दिनों से जो स्वामी कार्य करना चाहते थे वह प्राप्त भी हुआ था किन्तु तुमलोगों की पुण्यहीनता के कारण देवताओं ने राजा बाहुबली से भरत के साथ द्वन्द्व-युद्ध की प्रार्थना की है। वे भी द्वन्द्व-युद्ध ही चाहते थे फिर देवताओं ने भी जब प्रार्थना की है तब तो फिर बोलना ही क्या है? अतः इन्द्र के समान पराक्रमी महाराज बाहुबली तुमलोगों को युद्ध न करने की आज्ञा दे रहे हैं। देवताओं की तरह तुमलोग भी तटस्थ होकर हस्ती-मल्ल (ऐरावत) की तरह महापराक्रमी अपने स्वामी को युद्ध करते देखो और वक्र ग्रह की तरह अपने-अपने रथ अश्व और पराक्रमी हस्तियों को लौटा लो। सर्प को जिस प्रकार टोकरियों में रखा जाता है उसी प्रकार तुमलोग भी तलवारों को म्यान में रखो और केतु की तरह तुम्हारे भालों को कोष में भर दो। हाथी की सूँड से मुद्‌गर अब अपने

हाथों में मत रखो। ललाट से जिस प्रकार भृकुटि उतारी जाती है उसी प्रकार अपने धनुषों की प्रत्यंचा को उतार दो। भण्डार में जिस प्रकार धन रखा जाता है उसी प्रकार तुम्हारे तीर तूणीर में रखो एवं विद्युत जैसे मेघ में विलुप्त हो जाती है उसी प्रकार अपने क्रोध को शान्त करो।"

छड़ीदार की घोषणा वज्रघोष की तरह बाहुबली के सैनिकों ने सुनी। उनका चित्त विभ्रान्त हो गया। वे परस्पर इस प्रकार कहने लगे—"ये देवगण युद्ध देखकर वणिकों की तरह भयभीत हो गए हैं। ऐसा लगता है इन्होंने भरत की सैन्य से उत्कोच लिया है। ये हमारे पूर्व जन्म के वैरी-से हैं तभी तो स्वामी से कहकर हमारा युद्धोत्सव बन्द करवा दिया है। खाने के लिए बैठे आदमी के सम्मुख से जैसे कोई खाद्य भरा थाल उठा ले, स्नेह करते हुए मनुष्य की गोद से जैसे कोई शिशु हटा ले, कुएँ से बाहर निकलते समय सहायक पुरुष के हाथ से कुएँ में डाली रस्सी जैसे कोई खींच ले उसी प्रकार देवताओं ने हमारा रणोत्सव ही बन्द कर दिया। भरत राजा-सा ऐसा कौन दूसरा शत्रु मिलेगा जिसके साथ युद्ध कर हम महाराज बाहुबली का ऋण चुका सकेंगे। सगोत्र भाई बन्धु, चौर और पितृगृह में रहने वाली रमणी की तरह हमने व्यर्थ ही बाहुबली महाराज से धन ग्रहण किया। हमारी बाहुशक्ति भी उसी प्रकार व्यर्थ हो गयी जिस प्रकार वनवृक्षों की पुष्प गन्ध व्यर्थ हो जाती है। नपुंसक व्यक्ति द्वारा एकत्रित युवतियों के यौवन की तरह हमारा शस्त्र संग्रह व्यर्थ हो गया। शुकपक्षी द्वारा किए गए शास्त्राभ्यास की तरह हमारी शस्त्र शिक्षा व्यर्थ हो गयी। तपस्वियों के अधिगत कामशास्त्र का ज्ञान जैसे निष्फल होता है उसी प्रकार हमारा सैनिक होना भी व्यर्थ हो गया। हम अबोध थे जो हस्तियों को युद्ध में स्थिर रखने की और अश्वों को श्रम-विजयी बनाने का अभ्यास कराया कारण वह कोई काम नहीं आया। शरद् कालीन मेघ की तरह हमने व्यर्थ ही गर्जना की। महिषियों की तरह हमने व्यर्थ ही कटाक्ष किया। द्रव्य वहन कारी के भाँति हमारी समस्त प्रस्तुति वृथा हो गयी। फिर युद्ध का दोहद पूर्ण न होने से हमारा अहंकार धूल में मिल गया।

इस प्रकार बोलते सुनते दुःख रूपी विष में दग्ध होते हुए सर्प फुत्कार की तरह निश्वास छोड़ते हुए सैनिक लौट गए। क्षात्रव्रत रूपी धन से धनी राजा भरत ने भी अपनी सेना को उसी तरह लौटा लिया जैसे भाटे के समय समुद्र का जल लौट जाता है। पराक्रमी चक्रवर्ती द्वारा प्रत्याहृत सैनिक स्थान-

स्थान पर एकत्रित होकर विचार करने लगे—हमारे स्वामी भरत ने किस वैरी-से मन्त्री के कहने से द्वन्द्व युद्ध स्वीकार कर लिया ? तक्र आहार की तरह प्रभु ने यदि इस भाँति का युद्ध स्वीकार कर लिया तब तो फिर अब हमारी आवश्यकता ही क्या रहेगी। छः खण्ड पृथ्वी के किस राज्य को हमने परास्त नहीं किया कि उन्होंने हमें युद्ध के लिए रोक दिया ? जब निज सैनिक भाग जाते हैं, हार जाते हैं या मर जाते हैं तब स्वामी को युद्ध करना उचित होता है। कारण युद्ध की गति विचित्र है ! बाहुबली के अतिरिक्त यदि और कोई शत्रु होता तब तो स्वामी के द्वन्द्व-युद्ध में जय लाभ के विषय में हमें कोई—शंका ही नहीं रहती। किन्तु बलवान बाहु सम्पन्न बाहुबली के साथ प्रथम तो युद्ध करना ही उचित नहीं है। पहले हम युद्ध करते बाद में स्वामी को युद्ध में जाना चाहिए था। कारण पहले चाबुक से घोड़े को वश में किया जाता है बाद में उस पर सवार हुआ जाता है। चक्रवर्ती इस प्रकार सैनिकों को बोलते विचारते देखकर उनका मनोभाव जान गए अतः उन्हें बुलवाया और समझा कर कहने लगे—"हे वीर सैनिकों, जिस प्रकार अन्धकार का नश करने के लिए सूर्य किरणे अग्रवर्ती होती हैं उसी प्रकार शत्रु विनाश के लिए तुमलोग भी अग्रवर्ती रहते हो। गहन खन्द में गिरा हस्ती जिस भाँति दुर्ग के निकट नहीं जा सकता उसी प्रकार तुम लोगों के रहते कोई भी शत्रु मेरे पास नहीं आ सकता। इसके पूर्व तुमलोगों ने कभी मेरा युद्ध नहीं देखा इसलिए तुम्हारे मन में कुछ अन्यथा शंकाएँ उत्पन्न हो रही हैं। कहा भी गया है—भक्ति वहाँ भी शंका उत्पन्न कर देती है जहाँ शंका का कोई कारण ही नहीं होता। इसलिए हे वीर सैनिकगण, तुम सब एकत्रित होकर मेरे बाहुबल को देखो। रोग नष्ट हो जाने पर औषधि के लिए उत्पन्न शंका जिस प्रकार नष्ट हो जाती है उसी प्रकार तुम्हारी शंका भी दूर हो जाएगी।"

तत्पश्चात चक्रवर्ती ने सेवकों द्वारा एक खूब लम्बा चौड़ा और गहरा गर्त खुदवाया—दक्षिण समुद्र के तट पर जिस प्रकार सह्याद्रि पर्वत रहता है उसी प्रकार उस गर्त के समीप वे बैठ गए। वट-वृक्षों की लम्बी-लम्बी जटाओं की तरह भरतेश्वर ने अपने बाएँ हाथ में एक पर एक मजबूत शृंखल बँधवायी। किरणों से जिस प्रकार सूर्य शोभित होता है, लता से वृक्ष शोभित होता है उसी प्रकार एक हजार शृंखलाओं से महाराज सुशोभित होने लगे। फिर उन्होंने सैनिकों को कहा—"हे वीरों, जिस प्रकार गाय शकट को खींचती है उसी प्रकार तुमलोग तुम्हारे समस्त बल और वाहन द्वारा मुझे निर्भयतापूर्वक खींचो। और तुम सबके एकत्रित बल द्वारा मुझे इस गर्त्त में गिरा दो। प्रभु,

के बल की परीक्षा से प्रभु का अपमान होगा ऐसा सोचकर छल मत करो। मैंने एक दुःस्वप्न देखा है इस प्रकार तुमलोग उसे विनष्ट करो। कारण जो स्वप्न देखता है वह यदि स्वयं ही स्वप्न को सार्थक कर देता है तो स्वप्न निष्फल हो जाता है।" जब चक्री बार-बार यही बात कहने लगे तब सैनिकों को बाध्य होकर मानना पड़ा। कारण स्वामी की आज्ञा बलवान होती है फिर देव और असुरों ने मन्दराचल रूपी मन्थनदण्ड से वेष्टित सर्पों को जिस प्रकार खींचा था उसी प्रकार सैनिकगण चक्री के हाथों में बँधी शृंखला को खींचने लगे। उनके हाथो में बँधी इस शृंखला को पकड़े हुए सैनिक ऐसे लगने लगे मानो एक ऊँचे वृक्ष की शाखा पर एकदल बन्दर बैठे हों। पर्वत को बिद्ध करने का प्रयास करने वाले हस्तियों को (जैसे पर्वत उपेक्षा करता है) उसी प्रकार उन सब सैनिकों को जो उन्हें खींच रहे थे चक्री ने उपेक्षा की। तदुपरान्त उन्होंने अपना फैलाया हुआ हाथ छाती से लगाया उससे सब सैनिक इस प्रकार गिर गए जैसे पंक्ति में बँधे हुए घड़े खींचने पर गिर जाते हैं। उस समय चक्री के हाथों में झूलते हुए सैनिक इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे खजूर से खजूर वृक्ष शोभित होता है। अपने स्वामी की ऐसी शक्ति देखकर सैनिक आनन्दित हुए और इसके पूर्व उनके मन में जो आशंका उत्पन्न हुई थी उसे और उसीकी तरह प्रभु के भुजा की शृंखला को भी तुरन्त खोल दिया।

तदुपरान्त गायक जिस स्वर में गीत आरम्भ करता है उसी स्वर को पुनः पकड़ता है उसी भाँति चक्रवर्ती हस्तीपृष्ठ पर आरोहण कर रण भूमि में गए। गंगा और यमुना के मध्य जिस प्रकार वेदि प्रदेश (दो आब) शोभा पाता है उसी प्रकार दोनों सेनाओं के मध्य की भूमि शोभित होने लगी। जगत् संहार बन्द होने की जैसे किसी ने प्रेरणा दी है इस प्रकार पवन पृथ्वी की धूल को दूर करने लगा। देवगण समवसरण भूमि की तरह ही उस रण भूमि में सुगन्धित जल वर्षण करने लगे। मन्त्र विद् जैसे मण्डल की भूमि पर पुष्प वृष्टि करते हैं उसी प्रकार देवगण रणभूमि में पुष्पवृष्टि करने लगे। फिर कुंजर की भाँति गर्जन करते हुए दोनों राजकुंजरों ने हस्ती से उतरकर रणभूमि में प्रवेश किया। महाबलवान और क्रीड़ा करते हुए चलने वाले उन दोनों ने पद-पद पर कूर्मेन्द्र को प्राण भय से भयभीत किया।

पहले उन्होंने दृष्टि-युद्ध करने की प्रतिज्ञा की। और मानो इन्द्र और ईशानेन्द्र हों इस प्रकार वे एक दूसरे को अनिमेष नेत्रों से देखने लगे। रक्त वर्णीय दोनों नेत्रों से दोनों वीर आमने-सामने खड़े होकर एक दूसरे

को देखने लगे। एक दूसरे के सम्मुख खड़े वे दोनों सूर्य-चन्द्र से लग रहे थे। ध्यान करने वाले योगी की तरह निश्चल नेत्र किए वे बहुत देर तक स्थिर खड़े रहे। अन्ततः सूर्य किरणों से आक्रान्त नील कमल की तरह ऋषभ देव के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नेत्र बन्द हो गए। ऐसा लगा भरत क्षेत्र के छः खण्डों को विजय कर भरत ने जो कीर्त्ति प्राप्त की थी उसे अपने नेत्र सिंचित करने के बहाने अश्रुजल द्वारा पोंछ डाली। सुबह जिस प्रकार वृक्षादि आन्दोलित होते हैं देवताओं ने उसी प्रकार मस्तक हिलाया और महाबली बाहुबली पर पुष्प वर्षा की। सूर्योदय के समय के पक्षियों की तरह बाहुबली की जय होने के कारण सोमप्रभा आदि ने हर्ष ध्वनि की। कीर्त्तिरूपी नर्तकी ने मानो नृत्य करना आरम्भ किया हो इस प्रकार बाहुबली के सैनिकों ने जयवाद्यों को बजाया। राजा भरत के सैनिक तो इस प्रकार शिथिल हो गए मानों वे मूर्च्छित हो गए हैं, सो गए हैं या अस्वस्थ हो गए हैं। अन्धकार और प्रकाशशील मेरू पर्वत के दोनों ओर की तरह दोनों तरफ के सैनिक को मध्य विषाद और आनन्द दृष्टिगोचर होने लगा। उसी समय बाहुबली बोलें—"ऐसा मत कहना कि मैं काकतालीय न्याय की तरह जीत गया। अगर ऐसा सोचते हो तो वाक्‌युद्ध कर लो।" बाहुबली की यह बात सुनकर पद दलित सर्प की तरह चक्री क्रोधित होकर बोले—"इस युद्ध में भी तुम्हीं विजयी बन जाओ।"

ईशानेन्द्र के बलिवर्द जिस प्रकार नाद करते हैं सौधर्मेन्द्र के हस्ती गर्जन करते हैं, मेघ आवाज करते हैं उसी प्रकार राजा भरत ने सिंहनाद किया। वह सिंहनाद आकाश के चारों ओर इस प्रकार व्याप्त हो गया जैसे नदी के दोनों तटों पर बाढ़ आने से जल परिव्याप्त हो जाता है। लगा वह नाद युद्ध को देखने आए देवताओं के विमानों को भू-पतित कर रहा है। आकाश से ग्रह नक्षत्र और तारागणों को स्थानच्युत कर रहा है, पर्वत के उच्च शिखर को हिला रहा है और समुद्र जल को उछाल रहा है। उस सिंहनाद को सुनकर अपनी बुद्धि का अहंकार करने वालों छात्र जिस प्रकार गुरु की आज्ञा नहीं मानता उसी प्रकार रथों के अश्व लगाम की उपेक्षा करने लगे। चोर जिस प्रकार सद्‌वाणी नहीं सुनते उसी प्रकार हस्ती भी अंकुश को अग्राह्य करने लगे। कफ रोगी जैसे कटु पदार्थ नहीं खाता उसी प्रकार घोड़े लगाम को अस्वीकृत करने लगे। विट जिस प्रकार लज्जा शर्म नहीं करते उसी प्रकार ऊँट नाक की रस्सी को अग्राह्य करने लगे। भूताविष्ट की तरह खच्चर चाबुक के आघात की अवज्ञा करने लगे। इस प्रकार भरत चक्रवर्ती के सिंहनाद से घबड़ाकर कोई भी स्थिर न रह सका।

फिर बाहुबली ने सिंहनाद किया। सर्पों ने वह सिंहनाद सुना। वे सोचने लगे—गरुड़ नीचे उतर रहा है अतः वे रसातल की ओर गहराई में उतर जाना चाहा। समुद्र के जीव-जन्तु ने उस सिंहनाद को मन्दराचल द्वारा समुद्र मंथन से होने वाली आवाज समझा। अतः वे भयभीत हो गए। कुल पर्वत उस शब्द को सुनकर इन्द्र के वज्र शब्द की भ्रान्ति से विनाश की आशंका कर बार-बार काँपने लगे। मर्त्यलोक के समस्त मनुष्य उस शब्द को पुष्करावर्त्त मेघ की विद्युत ध्वनि समझ कर इधर उधर लोटने लगे। उस दुःश्रव शब्द को सुनकर देवगण असमय में दैत्यों के उपद्रव की आशंका करने लगे।

बाहुबली के सिंहनाद को सुनकर भरत ने पुनः इस प्रकार सिंहनाद किया कि देव-पत्नियाँ हिरणियों की तरह भयभीत हो गयीं। मानो क्रीड़ा छल से लोक को भयभीत करेंगे इस प्रकार चक्री और बाहुबली ने क्रमशः सिंहनाद किया। ऐसा करते-करते हाथी की सूँड़ और सर्प के शरीर की तरह राजा भरत का सिंहनाद धीरे-धीरे छोटा होने लगा। नदी के प्रवाह की तरह एवं सज्जनों के स्नेह की तरह बाहुबली का सिंहनाद अधिकाधिक बढ़ने लगा। इस प्रकार शास्त्रार्थ में वादी जिस प्रकार प्रतिवादी पर जय प्राप्त करता है उसी प्रकार बाहुबली ने भरत राजा पर विजय प्राप्त की।

तत्पश्चात् दोनों भाई बद्ध कक्ष हस्ती की तरह बाहु युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए। उसी समय उद्धत समुद्र की भाँति गर्जन करते हुए बाहुबली का सोने की छड़ीधारक मुख्य छड़ीदार ने कहा—'हे पृथ्वी, वज्र किलक की तरह पर्वतों को पकड़ो और अपनी समस्त शक्ति एकत्रित कर तुम स्थिर हो जाओ। हे नगराज, चारों ओर के पवन को आकृष्ट कर संहरण करो और पर्वत की तरह दृढ़ होकर पृथ्वी की रक्षा करो। हे महावराह, समुद्र के कर्दम में लोटे का पूर्व क्लान्ति अपनोदन करो और सतेज होकर पृथ्वी को अंक में लो। हे कूर्म, अपने वज्र से अंगों को चारों ओर संकुचित कर पीठ को मजबूत बनाओ और पृथ्वी को उठाओ। हे दिग्गज, पहले की तरह प्रमाद में या मद में झपकियाँ मत लो। कारण वज्रसार बाहुबली वज्रसार बाहु द्वारा चक्री के साथ युद्ध करने को खड़े हो रहे हैं।"

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अनेकान्त || अक्टूबर-दिसम्बर १९८३

इस अंक में है 'श्रीलंका और जैन धर्म' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'जैन धर्म की प्राचीनता व ऐतिहासिकता' (डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री) 'क्यागुप्त सम्राट राम गुप्त जैन धर्मावलम्बी था ?' (कुन्दन लाल जैन) 'क्षण भंगवाद और अनेकान्त' (अशोक कुमार जैन), 'आचार्य कुन्द-कुन्द की जैन दर्शन को देन' (लालचन्द जैन), 'जैन धर्म दर्शन में आराधक की अवधारणा' (डा० गुलाब चन्द जैन) ।

कुशल निर्देश || जनवरी १९८४

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघन जी का पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'जैन एकता : कतिपय सुझाव' (स्व० अगरचन्द जी नाहटा), 'जैन धर्म में भक्ति का स्वरूप' (मुनि ललितप्रभ सागर), 'राजा प्रियंकर' (पं० धीरजलाल टोकरसी शाह, अनु० भँवरलाल नाहटा) ।

जिनवाणी || जनवरी १९८४

आचार्य श्री हस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति का क्रम : एक विवेचना [३]. (चाँदमल कर्णावट), 'मानस से गुण स्थान' (पं० सूरजचंद), 'जैन धर्म का भारतीय संस्कृति को योगदान' (अनिता भंडारी) ।

जैन जगत || जनवरी १९८४

इस अंक में है 'बँगलोर का श्री आदिनाथ जैन मन्दिर' (भूर चन्द जैन) ।

तुलसी प्रज्ञा || अक्टूबर-दिसम्बर १९८३

'उत्सेधमान : एक मूल्यांकन' (मुनिश्री चन्दन), 'जैन आगम साहित्य में आहार' (साध्वी निर्वाण श्री, समणी कुसुम प्रज्ञा), आधुनिक जन जीवन में सत्य महाव्रत का महत्व' (डा० कैलाश चन्द्र जैन), The Religious Prayascittas according to the Old Jaina Ritual' (Colette Caillat), 'Concept of sound in Jaina philosophy : An Evaluation' (N. L. Jain), 'Jaina Technical Terms' (Dr. Mohanlal Mehta).

श्रमण || जनवरी १९८४

इस अंक में है 'कर्म का स्वरूप' (रवीन्द्रनाथ मिश्र), 'जैन धर्म दर्शन में आराधना का महत्व' (गुलाबचन्द्र जैन), 'यशस्तिलक चम्पू और जैन धर्म' (डा० सत्यभामा श्रीवास्तव) ।

Vol. VII No. 10 : Titthayara : February 1984
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700 001